रामचरित्मानस

उत्तरकाण्ड

श्री रामजी का प्रजा को उपदेश (श्री रामगीता), पुरवासियों की कृतज्ञता

चौपाई :

***एक बार रघुनाथ बोलाए। गुर द्विज पुरबासी सब आए॥ बैठे गुर मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन॥1॥

भावार्थ:-

एक बार श्री रघुनाथजी के बुलाए हुए गुरु वशिष्ठजी, ब्राह्मण और अन्य सब नगर निवासी सभा में आए। जब गुरु, मुनि, ब्राह्मण तथा अन्य सब सज्जन यथायोग्य बैठ गए, तब भक्तों के जन्म-मरण को मिटाने वाले श्री रामजी वचन बोले-॥1॥

*** सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहउँ न कछु ममता उर आनी॥ नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई॥2॥

भावार्थ:-

हे समस्त नगर निवासियों! मेरी बात सुनिए। यह बात मैं हृदय में कुछ ममता लाकर नहीं कहता हूँ। न अनीति की बात कहता हूँ और न इसमें कुछ प्रभुता ही है, इसलिए (संकोच और भय छोड़कर, ध्यान देकर) मेरी बातों को सुन लो और (फिर) यदि तुम्हें अच्छी लगे, तो उसके अनुसार करो!॥2॥

*** सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई॥ जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥3॥

भावार्थ:-

वही मेरा सेवक है और वही प्रियतम है, जो मेरी आज्ञा माने। हे भाई! यदि मैं कुछ अनीति की बात कहूँ तो भय भुलाकर (बेखटके) मुझे रोक देना॥3॥

*** बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा॥ साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥4॥

भावार्थ:-

बड़े भाग्य से यह मनुष्य शरीर मिला है। सब ग्रंथों ने यही कहा है कि यह शरीर देवताओं को भी दुर्लभ है (कठिनता से मिलता है)। यह साधन का धाम और मोक्ष का दरवाजा है। इसे पाकर भी

जिसने परलोक न बना लिया,॥4॥

दोहा :

*** सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई। सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताई॥43॥

भावार्थ:-

वह परलोक में दुःख पाता है, सिर पीट-पीटकर पछताता है तथा (अपना दोष न समझकर) काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है॥43॥

चौपाई :

*** एहि तन कर फल बिषय न भाई। स्वर्गउ स्वल्प अंत दुखदाई॥ नर तनु पाइ बिषयँ मन देहीं। पलटि सुधा ते सठ बिष लेहीं॥1॥

भावार्थ:-

हे भाई! इस शरीर के प्राप्त होने का फल विषयभोग नहीं है (इस जगत् के भोगों की तो बात ही क्या) स्वर्ग का भोग भी बहुत थोड़ा है और अंत में दुःख देने वाला है। अतः जो लोग मनुष्य शरीर पाकर विषयों में मन लगा देते हैं, वे मूर्ख अमृत को बदलकर विष ले लेते हैं॥1॥

*** ताहि कबहुँ भल कहइ न कोई। गुंजा ग्रहइ परस मनि खोई॥ आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी॥2॥

भावार्थ:-

जो पारसमणि को खोकर बदले में घुँघची ले लेता है, उसको कभी कोई भला (बुद्धिमान) नहीं कहता। यह अविनाशी जीव (अण्डज, स्वेदज, जरायुज और उद्भिज्ज) चार खानों और चौरासी लाख योनियों में चक्कर लगाता रहता है॥2॥

*** फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा॥ कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥3॥

भावार्थ:-

माया की प्रेरणा से काल, कर्म, स्वभाव और गुण से घिरा हुआ (इनके वश में हुआ) यह सदा भटकता रहता है। बिना ही कारण स्नेह करने वाले ईश्वर कभी विरले ही दया करके इसे मनुष्य का शरीर देते हैं॥3॥

*** नर तनु भव बारिधि कहुँ बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो॥ करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा॥4॥

भावार्थ:-

यह मनुष्य का शरीर भवसागर (से तारने) के लिए बेड़ा (जहाज) है। मेरी कृपा ही अनुकूल वायु है। सद्गुरु इस मजबूत जहाज के कर्णधार (खेने वाले) हैं। इस प्रकार दुर्लभ (कठिनता से मिलने वाले) साधन सुलभ होकर (भगवत्कृपा से सहज ही) उसे प्राप्त हो गए हैं,॥4॥

दोहा :

*** जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥44॥

भावार्थ:-

जो मनुष्य ऐसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मंद बुद्धि है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है॥44॥

चौपाई :

*** जौं परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदयँ दृढ़ गहहू॥ सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई॥1॥

भावार्थ:-

यदि परलोक में और यहाँ दोनों जगह सुख चाहते हो, तो मेरे वचन सुनकर उन्हें हृदय में दृढ़ता से पकड़ रखो। हे भाई! यह मेरी भक्ति का मार्ग सुलभ और सुखदायक है, पुराणों और वेदों ने इसे गाया है॥1॥

*** ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका॥ करत कष्ट बहु पावइ कोऊ। भक्ति हीन मोहि प्रिय नहिं सोऊ॥2॥

भावार्थ:-

ज्ञान अगम (दुर्गम) है (और) उसकी प्राप्ति में अनेकों विघ्न हैं। उसका साधन कठिन है और उसमें मन के लिए कोई आधार नहीं है। बहुत कष्ट करने पर कोई उसे पा भी लेता है, तो वह भी भक्तिरहित होने से मुझको प्रिय नहीं होता॥2॥

*** भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥ पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥3॥

भावार्थ:-

भक्ति स्वतंत्र है और सब सुखों की खान है, परंतु सत्संग (संतों के संग) के बिना प्राणी इसे नहीं पा सकते और पुण्य समूह के बिना संत नहीं मिलते। सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरण के चक्र) का अंत करती है॥3॥

***पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥ सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥4॥

भावार्थ:-

जगत् में पुण्य एक ही है, (उसके समान) दूसरा नहीं। वह है- मन, कर्म और वचन से ब्राह्मणों के चरणों की पूजा करना। जो कपट का त्याग करके ब्राह्मणों की सेवा करता है, उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं॥4॥

दोहा :

*** औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥45॥

भावार्थ:-

और भी एक गुप्त मत है, मैं उसे सबसे हाथ जोड़कर कहता हूँ कि शंकरजी के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नहीं पाता॥45॥

चौपाई :

*** कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥1॥

भावार्थ:-

कहो तो, भक्ति मार्ग में कौन-सा परिश्रम है? इसमें न योग की आवश्यकता है, न यज्ञ, जप, तप और उपवास की! (यहाँ इतना ही आवश्यक है कि) सरल स्वभाव हो, मन में कुटिलता न हो और जो कुछ मिले उसी में सदा संतोष रखे॥1॥

*** मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥ बहुत कहउँ का कथा बढ़ाई। एहि आचरन बस्य मैं भाई॥2॥

भावार्थ:-

मेरा दास कहलाकर यदि कोई मनुष्यों की आशा करता है, तो तुम्हीं कहो, उसका क्या विश्वास है? (अर्थात् उसकी मुझ पर आस्था बहुत ही निर्बल है) बहुत बात बढ़ाकर क्या हूँ? हे भाइयों! मैं तो इसी आचरण के वश में हूँ॥2॥

*** बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥ अनारंभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दच्छ बिग्यानी॥3॥

भावार्थ:-

न किसी से वैर करे, न लड़ाई-झगड़ा करे, न आशा रखे, न भय ही करे। उसके लिए सभी दिशाएँ सदा सुखमयी हैं। जो कोई भी आरंभ (फल की इच्छा से कर्म) नहीं करता, जिसका कोई अपना घर नहीं है (जिसकी घर में ममता नहीं है), जो मानहीन, पापहीन और क्रोधहीन है, जो (भक्ति करने में) निपुण और विज्ञानवान् है॥3॥

*** प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा॥ भगति पच्छ हठ नहिं सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई॥4॥

भावार्थ:-

संतजनों के संसर्ग (सत्संग) से जिसे सदा प्रेम है, जिसके मन में सब विषय यहाँ तक कि स्वर्ग और मुक्ति तक (भक्ति के सामने) तृण के समान हैं, जो भक्ति के पक्ष में हठ करता है, पर (दूसरे के मत का खण्डन करने की) मूर्खता नहीं करता तथा जिसने सब कुतर्कों को दूर बहा दिया है ॥4॥ दोहा -

*** मम गुन ग्राम नाम रत गत ममता मद मोह। ता कर सुख सोइ जानइ परानंद संदोह॥46॥
भावार्थ:-
जो मेरे गुण समूहों के और मेरे नाम के परायण है, एवं ममता, मद और मोह से रहित है, उसका सुख वही जानता है, जो (परमात्मारूप) परमानन्दराशि को प्राप्त है॥46॥ चौपाई-
*** सुनत सुधा सम बचन राम के । गहे सबनि पद कृपाधाम के॥ जननि जनक गुर बंधु हमारे। कृपा निधान प्रान ते प्यारे॥1॥
भावार्थ:-
श्रीरामचन्द्रजी के अमृत के समान वचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड़ लिए (और कहा-) हे कृपानिधान! आप हमारे माता, पिता, गुरु, भाई सब कुछ हैं और प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं॥1॥
*** तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम्ह प्रनतारति हारी॥ असि सिख तुम्ह बिनु देइन कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥2॥
भावार्थ:-
और हे शरणागत के दुःख हरने वाले रामजी! आप ही हमारे शरीर, धन, घर-द्वार और सभी प्रकार से हित करने वाले हैं। ऐसी शिक्षा आपके अतिरिक्त कोई नहीं दे सकता। माता-पिता (हितैषी हैं और शिक्षा भी देते हैं) परन्तु वे भी स्वार्थपरायण हैं (इसलिए ऐसी परम हितकारी शिक्षा नहीं देते)॥2॥
*** हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥ स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥3॥
भावार्थ:-
हे असुरों के शत्रु! जगत् में बिना हेतु के (निःस्वार्थ) उपकार करने वाले तो दो ही हैं- एक आप, दूसरे आपके सेवक। जगत् में (शेष) सभी स्वार्थ के मित्र हैं। हे प्रभो! उनमें स्वप्न में भी परमार्थ का भाव नहीं है॥3॥
*** सब के बचन प्रेम रस साने। सुनि रघुनाथ हृदयँ हरषाने॥ निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई॥4॥
भावार्थ:-
सबके प्रेम रस में सने हुए वचन सुनकर श्री रघुनाथजी हृदय में हर्षित हुए। फिर आज्ञा पाकर सब प्रभु की सुन्दर बातचीत का वर्णन करते हुए अपनेअपने घर गए॥4॥ दोहा -
*** उमा अवधबासी नर नारि कृतारथ रूप। ब्रह्म सच्चिदानंद घन रघुनायक जहँ भूप॥47॥
भावार्थ:-
(शिवजी कहते हैं-) हे उमा! अयोध्या में रहने वाले पुरुष और स्त्री सभी कृतार्थस्वरूप हैं, जहाँ स्वयं सच्चिदानंदघन ब्रह्म श्री रघुनाथजी राजा हैं॥47॥

श्री राम-वशिष्ठ संवाद, श्री रामजी का भाइयों सहित अमराई में जाना

चौपाई :

***एक बार बसिष्ट मुनि आए। जहाँ राम सुखधाम सुहाए॥ अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा॥1॥

भावार्थ:-

एक बार मुनि वशिष्ठजी वहाँ आए जहाँ सुंदर सुख के धाम श्री रामजी थे। श्री रघुनाथजी ने उनका बहुत ही आदर-सत्कार किया और उनके चरण धोकर चरणामृत लिया॥1॥

*** राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिंधु बिनती कछु मोरी॥ देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा॥2॥

भावार्थ:-

मुनि ने हाथ जोड़कर कहा- हे कृपासागर श्री रामजी! मेरी कुछ विनती सुनिए! आपके आचरणों (मनुष्योचित चरित्रों) को देख-देखकर मेरे हृदय में अपार मोह (भ्रम) होता है॥2॥

*** महिमा अमिति बेद नहिं जाना। मैं केहि भाँति कहउँ भगवाना॥ उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा॥3॥

भावार्थ:-

हे भगवन्! आपकी महिमा की सीमा नहीं है, उसे वेद भी नहीं जानते। फिर मैं किस प्रकार कह सकता हूँ? पुरोहिती का कर्म (पेशा) बहुत ही नीचा है। वेद, पुराण और स्मृति सभी इसकी निंदा करते हैं॥3॥

*** जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥ परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥4॥

भावार्थ:-

जब मैं उसे (सूर्यवंश की पुरोहिती का काम) नहीं लेता था, तब ब्रह्माजी ने मुझे कहा था- हे पुत्र! इससे तुमको आगे चलकर बहुत लाभ होगा। स्वयं ब्रह्म परमात्मा मनुष्य रूप धारण कर रघुकुल के भूषण राजा होंगे॥4॥

दोहा :

*** तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान। जा कुहँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन॥48॥

भावार्थ:-

तब मैंने हृदय में विचार किया कि जिसके लिए योग, यज्ञ, व्रत और दान किए जाते हैं उसे मैं इसी कर्म से पा जाऊँगा, तब तो इसके समान दूसरा कोई धर्म ही नहीं है॥48॥

चौपाई :

*** जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥ ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥1॥

भावार्थ:-

जप, तप, नियम, योग, अपने-अपने (वर्णाश्रम के) धर्म, श्रुतियों से उत्पन्न (वेदविहित) बहुत से शुभ कर्म, ज्ञान, दया, दम (इंद्रियनिग्रह), तीर्थस्नान आदि जहाँ तक वेद और संतजनों ने धर्म कहे हैं (उनके करने का)-॥1॥

*** आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥ तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥2॥

भावार्थ:-

(तथा) हे प्रभो! अनेक तंत्र, वेद और पुराणों के पढ़ने और सुनने का सर्वोत्तम फल एक हीहै और सब साधनों का भी यही एक सुंदर फल है कि आपके चरणकमलों में सदा-सर्वदा प्रेम हो॥2॥

*** छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥ प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥3॥

भावार्थ:-

मैल से धोने से क्या मैल छूटता है? जल के मथने से क्या कोई घी पा सकता है? (उसी प्रकार) हे रघुनाथजी! प्रेमभक्ति रूपी (निर्मल) जल के बिना अंतःकरण का मल कभी नहीं जाता॥3॥

*** सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित॥ दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥4॥

भावार्थ:-

वही सर्वज्ञ है, वही तत्त्वज्ञ और पंडित है, वही गुणों का घर और अखंड विज्ञानवान् है, वही चतुर और सब सुलक्षणों से युक्त है, जिसका आपके चरण कमलों में प्रेम है॥4॥

दोहा :

*** नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु। जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥49॥

भावार्थ:-

जहे नाथ! हे श्री रामजी! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ, कृपा करके दीजिए। प्रभु (आप) के चरणकमलों में मेरा प्रेम जन्म-जन्मांतर में भी कभी न घटे॥49॥

चौपाई :

*** अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आए। कृपासिंधु के मन अति भाए॥ हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता॥1॥

भावार्थ:-

ऐसा कहकर मुनि वशिष्ठजी घर आए। वे कृपासागर श्री रामजी के मन को बहुत ही अच्छे लगे। तदनन्तर सेवकों को सुख देने वाले श्री रामजी ने हनुमान्‌जी तथा भरतजी आदि भाइयों को साथ लिया,॥1॥

*** पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मगावत भए॥ देखि कृपा करि सकल सराहे। दिए उचित जिन्ह जिन्ह तेइ चाहे॥2॥

भावार्थ:-

और फिर कृपालु श्री रामजी नगर के बाहर गए और वहाँ उन्होंने हाथी, रथ और घोड़े मँगवाए। उन्हें देखकर कृपा करके प्रभु ने सबकी सराहना की और उनको जिस-जिसने चाहा, उस-उसको उचित जानकर दिया॥2॥

*** हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई॥ भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥3॥

भावार्थ:-

संसार के सभी श्रमों को हरने वाले प्रभु ने (हाथी, घोड़े आदि बँटने में) श्रम का अनुभव किया और (श्रम मिटाने को) वहाँ गए जहाँ शीतल अमराई (आमों का बगीचा) थी। वहाँ भरतजी ने अपना वस्त्र बिछा दिया। प्रभु उस पर बैठ गए और सब भाई उनकी सेवा करने लगे॥3॥

*** मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥ हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ राम चरन अनुरागी॥4॥ गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई॥5॥

भावार्थ:-

उस समय पवनपुत्र हनुमान्‌जी पवन (पंखा) करने लगे। उनका शरीर पुलकित हो गया और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल भर आया। (शिवजी कहने लगे-) हे गिरिजे! हनुमान्‌जी के समान न तो कोई बड़भागी है और न कोई श्री रामजी के चरणों का प्रेमी ही है, जिनके प्रेम और सेवा की (स्वयं) प्रभु ने अपने श्रीमुख से बार-बार बड़ाई की है॥4-5॥

नारदजी का आना और स्तुति करके ब्रह्मलोक को लौट जाना

दोहा :

*** तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन। गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥50॥

भावार्थ:-

उसी अवसर पर नारदमुनि हाथ में वीणा लिए हुए आए। वे श्री रामजी की सुंदर और नित्य नवीन रहने वाली कीर्ति गाने लगे॥50॥

चौपाई :

*** मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥ नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥1॥

भावार्थ:-

कृपापूर्वक देख लेने मात्र से शोक के छुड़ाने वाले हे कमलनयन! मेरी ओर देखिए (मुझ पर भी कृपादृष्टि कीजिए) हे हरि! आप नीलकमल के समान श्यामवर्ण और कामदेव के शत्रु महादेवजी के हृदय कमल के मकरन्द (प्रेम रस) के पान करने वाले भ्रमर हैं॥1॥

*** जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥ भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक॥2॥

भावार्थ:-

आप राक्षसों की सेना के बल को तोड़ने वाले हैं। मुनियों और संतजनों को आनंद देने वाले और पापों का नाश करने वाले हैं। ब्राह्मण रूपी खेती के लिए आप नए मेघसमूह हैं और शरणहीनों को शरण देने वाले तथा दीन जनों को अपने आश्रय में ग्रहण करने वाले हैं॥2॥

*** भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥ रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥3॥

भावार्थ:-

अपने बाहुबल से पृथ्वी के बड़े भारी बोझ को नष्ट करने वाले, खर दूषण और विराध के वध करने में कुशल, रावण के शत्रु, आनंदस्वरूप, राजाओं में श्रेष्ठ और दशरथ के कुल रूपी कुमुदिनी के चंद्रमा श्री रामजी! आपकी जय हो॥3॥

*** सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥ करुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥4॥

भावार्थ:-

आपका सुंदर यश पुराणों, वेदों में और तंत्रादि शास्त्रों में प्रकट है! देवता, मुनि और संतों के समुदाय उसे गाते हैं। आप करुणा करने वाले और झूठे मद का नाश करने वाले, सब प्रकार से कुशल (निपुण) श्री अयोध्याजी के भूषण ही हैं॥4॥

*** कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥5॥

भावार्थ:-

आपका नाम कलियुग के पापों को मथ डालने वाला और ममता को मारने वाला है। हे तुलसीदास के प्रभु! शरणागत की रक्षा कीजिए॥5॥

दोहा :

*** प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम। सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम॥51॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के गुणसमूहों का प्रेमपूवक वर्णन करके मुनि नारदजी शोभा के समुद्र प्रभु को हृदय में धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है, वहाँ चले गए॥51॥ ***अगला पेज...***